रोजगार और हकीकत

करी नहीं मिलने की वजह से अगर नौजवानों को खुदकुशी जैसे कदम उठाने को मजबूर होना पड़े तो यह सरकार और समाज दोनों के लिए गंभीर चिंता का विषय है। कोई हफ्ता ऐसा नहीं गुजरता जब काम नहीं मिलने या नौकरी चली जाने की वजह से नौजवानों के जान देने की खबर देखने-सुनने में न आती हो। चिंताजनक बात यह है कि आज बड़ी संख्या में ऐसे नौजवान हैं जो इंजीनियरिंग या अन्य पेशेवर कोर्स कर चुके हैं लेकिन उनके पास काम-धंधा नहीं है। दिल्ली में चार दिन पहले फिर एक बीटैक डिग्रीधारी इंजीनियर ने पुल से छलांग लगा कर इसलिए जान दे दी कि उसे नौकरी नहीं मिल रही थी। कुछ महीने पहले राजस्थान के अलवर जिले में चार नौजवानों ने ट्रेन के सामने कूद कर सामूहिक रूप से खुदकुशी कर ली थी। भले सरकारों तक इन नौजवानों की आवाज न पहुंची हो, लेकिन इस घटना ने बेरोजगारों की पीड़ा को सामने ला दिया था। इस तरह की घटनाएं बता रही हैं कि हमारी सरकारें रोजगार मुहैया कराने के मोर्चे पर एकदम नाकाम साबित हुई हैं।

शिक्षा. स्वास्थ्य और रोजगार ऐसे विषय हैं जिनसे केंद्र और राज्य की सरकारें मुंह नहीं मोड़ सकतीं। शिक्षित नौजवानों को रोजगार मुहैया कराना सरकारों की प्राथमिकता होनी चाहिए। लेकिन हालात और आंकड़े बताते हैं कि इन तीनों मोर्चों पर भारत का सरकारी तंत्र विफल साबित हुआ है। जब चुनाव करीब आते हैं तो हर दल और सरकार के लिए रोजगार एक बड़ा मुद्दा इसलिए बन जाता है कि नौजवान मतदाता बड़े वोट बैंक होते हैं। इसलिए तब हर दल और सरकारें बड़े-बड़े दावे करते हैं, बेरोजगारी भत्ते जैसे प्रलोभन देते हैं, लेकिन चुनाव बाद ये वादे हकीकत में तब्दील होते नजर नहीं आते। ऐसे में इंजीनियरिंग, मेडिकल, प्रबंधन जैसे पेशेवर कोर्स करने वालों को काम नहीं मिलेगा तो हताश होना स्वाभाविक ही है। लाखों रुपए खर्च करके पढ़ाई करने के बाद काम नहीं मिलना निश्चित रूप से युवाओं में हताशा पैदा करने वाली बात है।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि रोजगार क्षेत्र के हालात विकट हैं। यह समस्या विकराल रूप इसलिए धारण कर चुकी है कि शिक्षित युवाओं की फौज तो बढ़ रही है, सरकारें उन्हें रोजगार मुहैया नहीं करा पा रहीं। निजी क्षेत्र में स्थिति और गंभीर है, जहां सिर पर हमेशा छंटनी की तलवार लटकी रहती है। सरकार के रोजगार संबंधी आंकड़े तो भ्रम की स्थिति पैदा करने वाले हैं। बेरोजगारी और इसके आंकड़ों को लेकर देशभर में जो बहस चलती रही है वह सरकार के दावों की पोल खोलने के लिए काफी है। यह किसी से छिपा नहीं है कि पिछले कुछ सालों में केंद्र और राज्य सरकार ने अपने यहां लाखों नौकरियां खत्म कर दी हैं। रोजगार के नाम पर कम पैसे में ठेके पर काम पर रखने की नीति चल पड़ी है। हाल में फिर लाखों नौकरियों के सृजन का दावा किया गया है। सरकार के राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (एनएसएसओ) ने पिछले साल जो रिपोर्ट जारी की थी वह हकीकत सामने लाने वाली थी। इसमें कहा गया था कि पैंतालीस साल में पहली बार बेरोजगारी दर छह फीसद से ऊपर निकल गई है। इससे सरकार के हाथ-पैर फुल गए थे और सरकार ने इसे अधूरा करार दिया था। इससे साफ है कि रोजगार को लेकर सरकारी दावे जहां खोखले साबित हो रहे हैं वहीं आंकड़े भ्रम पैदा कर रहे हैं। सवाल है कि अगर लाखों नौकरियां सृजित हो रही हैं, काम के मौके बन रहे हैं तो फिर नौजवानों को काम मिल क्यों नहीं रहा?

अदालत की भाषा

च्यमारे यहां अदालत की भाषा को लेकर अनेक मौकों पर सवाल उठते एरहे हैं कि यह आम आदमी की समझ से परे है। कई बार यह भी मांग उठी कि उच्च अदालतों में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में भी मुकदमे दायर करने और फैसले सुनाने का प्रावधान होना चाहिए। मगर इस मामले में अभी तक कोई सकारात्मक नतीजा नहीं निकल पाया है। जबिक अबू धाबी सरकार ने अपने यहां अरबी और अंग्रेजी के अलावा हिंदी को भी अदालतों की तीसरी आधिकारिक भाषा की मान्यता दे दी है। अबू धाबी में करीब तीस फीसद भारतीय रहते हैं। इन लोगों को शिकायतें, दावे और अनुरोध पेश करने में सुविधा हो और अदालती कार्यवाही में सहूलियत तथा न्यायिक प्रक्रिया में पारदर्शिता बनी रहे, इसलिए वहां की सरकार ने यह फैसला किया। अबू धाबी का यह फैसला भारतीय न्यायिक सेवा के लिए नजीर हो सकता है।

भारत की निचली अदालतों में तो कामकाज स्थानीय भाषा में होता है, पर उच्च और उच्चतम न्यायालय में अंग्रेजी ही मुख्य भाषा है। हालांकि उच्च न्यायालयों में मांगने पर हिंदी या क्षेत्रीय भाषाओं में फैसले की प्रति उपलब्ध कराने का प्रावधान है, पर ज्यादातर जगहों पर कामकाज अंग्रेजी में ही होता है। इसका नतीजा यह होता है कि लोगों को सामान्य अपील या आवेदन, शिकायत आदि के लिए भी वकीलों पर निर्भर रहना पड़ता है। फिर कानूनी शब्दावली इस कदर जटिल और भ्रामक है कि वह आम आदमी की समझ से परे है। वकीलों और जजों के बीच होने वाली जिरह अपील करने वाला व्यक्ति समझ ही नहीं पाता। वह जान ही नहीं पाता कि वह जो बात कहना चाहता है, वही बात उसका वकील कह रहा है या नहीं। इस तरह उच्च न्यायालयों की कार्यवाहियों में पारदर्शिता नहीं आ पाती। मुकदमे की मुख्य कड़ी वकील होता है। इसी का नतीजा है कि ऊपरी अदालतों में वकील अपने मुविक्कलों से मनमानी फीस वसूलते हैं, जिसका कोई तार्किक आधार नहीं समझ आता। समझना मुश्किल है कि जब तमाम कार्यालयों में हिंदी में कामकाज पर जोर दिया जाता है. तो फिर ऊपरी अदालतों में इसे अनिवार्य क्यों नहीं किया जा सकता दरअसल, हमारे यहां अदालत की भाषा अंग्रेजी इसलिए भी बनी

हुई है कि ऊपरी अदालतों के ज्यादातर वकील और जज इसी भाषा में काम करने के अभ्यस्त हैं। हालांकि जब वकीलों के पास लोग किसी मकदमे के सिलिसले में जाते हैं, तो वे अपनी बात हिंदी या अपनी क्षेत्रीय भाषा में ही बताते-समझते हैं, पर जब अदालत में जिरह करने या कागजात तैयार करने की बात आती है, तो अंग्रेजी का ही सहारा लिया जाता है। ऐसा नहीं कि हिंदी या दूसरी भारतीय भाषाओं में कानून की पढ़ाई नहीं होती या इन भाषाओं में कानून संबंधी तकनीकी शब्दावली का विकास नहीं हुआ है। पर ब्रिटिश जमाने से सर्वोच्च न्यायालय की भाषा अंग्रेजी बनी हुई है। अदालत का कामकाज इस तरह होना चाहिए कि वह केवल जज और वकील के बीच का संवाद बन कर न रह जाए, उसमें वादी और प्रतिवादी की भी हिस्सेदारी होनी चाहिए। मगर वह केवल कुछ गवाहियों तक सीमित रह जाती है। बाकी समय लोगों को समझ ही नहीं आता कि उनके मुकदमे में क्या हो रहा है। फिर जब फैसला आता है, तो वे उसे खुद पढ़ कर समझ तक नहीं सकते, किसी वकील या कानून के जानकार व्यक्ति से मदद लेनी पड़ती है। अबू धाबी से नजीर लेकर भारत में भी आम आदमी की भाषा को अदालत की भाषा बनाने का प्रयास होना चाहिए।

कल्पमधा

हमारे जीवन में जो भी दृढ़ और स्थायी खुशी है उसके लिए नब्बे प्रतिशत प्रेम ही उत्तरदायी है। -सीएस लुईस

बोडो आतंक की चुनौती

ब्रहमदीप अलूने

बोडोलैंड की मांग उभरने का प्रमुख कारण असम के आदिवासी क्षेत्रों में अन्य इलाकों से आकर बसने वालों और घुसपैट को माना जाता है। दरअसल, असम में 1947 से ही घुसपैटियों की आवाजाही रही जो 1971 में बड़े पैमाने पर बढ़ गई। भारत की विभिन्न सरकारें इसे लगातार नजरअंदाज करती रही और इस कारण समूचा उत्तर-पूर्व अलगाव और आतंकवाद का केंद्र बन गया।

🎹 र्चोत्तर के प्रवेश द्वार असम में जितनी भौगोलिक 【 असमानताएं हैं उससे कहीं ज्यादा सांस्कृतिक विभिन्नताएं हैं। बराक और ब्रह्मपुत्र घाटी में बंटे इसके प्राकृतिक क्षेत्र कबीलों और जातियों के प्रभृत्व की रक्तरंजित लड़ाई से अभिशप्त रहे हैं और देश की सुरक्षा के लिए यह बड़ा चुनौतीपूर्ण रहा है। हाल ही में सीबीआइ की विशेष अदालत ने असम के विभिन्न इलाकों में 2008 में शृंखलाबद्ध बम विस्फोट के मुख्य साजिशकर्ता नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रंट ऑफ बोडोलैंड के प्रमुख रंजन दैमारी और नौ अन्य को उम्रकैद की सजा सुनाई है। इन विस्फोटों में इक्यासी लोग मारे गए थे। भारत से अलग पृथक बोडोलैंड के पक्ष में लगातार हिंसक आंदोलन चलाने वाले नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रंट ऑफ बोडोलैंड के उग्रवादियों का कानूनी शिकंजे में फंसना निश्चित ही भारतीय सुरक्षा एजेंसियों की बड़ी सफलता है, लेकिन इस संगठन के प्रभाव की हिंसक चुनौती अभी भी बरकरार है।

राष्ट्रीय जांच एजेंसी (एनआइए) की सूची में शामिल

आतंकी संगठनों में नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रंट ऑफ बोडोलैंड समेत पूर्वोत्तर के अन्य संगठन शामिल हैं जो बोडोलैंड की मांग को लेकर हिंसक आंदोलन छेड़े हुए हैं। इनमें युनाइटेड लिबरेशन फ्रंट ऑफ असम या उल्फा भी शामिल है। बोडोलैंड की मांग उभरने का प्रमुख कारण असम के आदिवासी क्षेत्रों में अन्य इलाकों से आकर बसने वालों और घुसपैठ को माना जाता है। दरअसल, असम में 1947 से ही घुसपैठियों की आवाजाही रही जो 1971 में बड़े पैमाने पर बढ़ गई। भारत की विभिन्न सरकारें इसे लगातार नजरअंदाज करती रहीं और इस कारण समूचा उत्तर-पूर्व अलगाव और आतंकवाद का केंद्र बन गया। इस घुसपैठ से वहां रहने वाले आदिवासियों के सामने सांस्कृतिक, आर्थिक और जातीय पहचान का संकट खडा हो गया और इसी कारण वहां अस्सी के दशक में अलगाववादी संगठन उल्फा अस्तित्व में आया। उसने अपनी पहचान बनाए रखने के लिए पृथक बोडोलैंड की मांग रखी। बाद में बोडो ने मूल निवासी बनाम प्रवासी को मुख्य एजेंडा बना लिया, उन्होंने प्रवासी

मुसलमानों और अन्य आदिवासी समूहों को निशाना बनाना शुरू किया जो बाद में जातीय और सांप्रदायिक उन्माद का कारण बन गया।

उल्फा के समान ही असम में सिक्रय नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रंट ऑफ बोडोलैंड (एनडीएफबी) भी भारत से आजाद होकर एक अलग होमलैंड की मांग कर रहा है। यह मुलतः बोडो आदिवासी समुदाय का संगठन है जो असम को अपनी जमीन मानते हैं और यहां पर बसने वाले अन्य जातीय समृहों को संदेह से देखते हैं। बोडो, जिन्हें अपना प्रतिद्वंद्वी समझते हैं उनमें असम में रहने वाले हिंदी भाषी, अन्य आदिवासी समुदाय और मुसलमान शामिल हैं। मुसलमानों में अधिकांश बंगाली मुसलमान हैं, जिसका फायदा बांग्लादेश

से आए घुसपैठियों ने भी उठाया है और इससे इस इलाके में हिंसा में बढ़ोतरी हो रही है। एनडीएफबी अरुणाचल प्रदेश, भूटान और बांग्लादेश की सीमा के पास अधिक सक्रिय है। यहीं से वह अपनी गतिविधि चलाता है। साल 2003 में भारतीय सेना ने भूटान की सेना के साथ मिल कर ऑपरेशन ऑल क्लियर नामक एक आतंकवाद विरोधी अभियान चलाकर कई आतंकी शिविरों को ध्वस्त कर दिया था। इस कार्रवाई में नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रंट ऑफ बोडोलैंड के कई आतंकी मारे भी गए थे। लेकिन उसके बाद भी इस समृह की हिंसक गतिविधियां जारी रहीं। इसका प्रमुख कारण उन्हें बांग्लादेश से मिलने वाली मदद रही है।

असम के बोडोलैंड टेरीटोरियल एरिया डिस्ट्रिक्ट्स के अंतर्गत कोकराझार, बक्सा, उदलगृड़ी और चिरांग इलाके

आते हैं। यहां पर एनडीएफबी अधिक प्रभावी है और सेना के साथ अन्य जातीय समृहों को अक्सर निशाना बनाते हैं। भूटान, बांग्लादेश और चीन से लगता यह इलाका बोडो उग्रवादियों को छिपने की जगह और हथियार भी उपलब्ध कराता है। बांग्लादेश असम में अशांति का मुख्य स्रोत है। चार हजार किलोमीटर से ज्यादा लंबी भारत-बांग्लादेश सीमा भौगोलिक और सांस्कृतिक जटिलताओं के कारण भारत के लिए सबसे बड़ा सुरक्षा संकट रही है। इसका फायदा पाकिस्तान की खुफियां एजेंसी आइएसआइ खूब उठाती है और कई इलाकों में भारत के विरुद्ध विद्रोही संगठनों को आश्रय और प्रशिक्षित करके भारत पर हमले करने के लिए प्रेरित करती है। उनका ध्यान खासतौर पर ऐसे समृहों के लिए होता है जो भारत के सीमा प्रांतों में विभाजन करना चाहते हैं।

पूर्वोत्तर के कई विद्रोही संगठनों को बांग्लादेश में पनाह मिलती रही है। वहां का काक्स बाजार विदेशी हथियारों का प्रमुख केंद्र है। यहीं से सड़क मार्ग से भी



हथियार भारत आ जाते हैं। बांग्लादेश के चटगांव, खगराचरी, मौलवी बाजार, हबीबगंज, स्लीट, मेमन सिंह, कुरी ग्राम, कोमिला, रंगमाटी, बंदरबन और ढाका में ऐसे कई शिविर हैं जो आतंकवादियों की पनाहगाह हैं। यहां पर भारत विरोधी अंतरराष्ट्रीय ताकर्ते भी प्रभावी हैं। भारत के पूर्वोत्तर के कई अलगाववादी नेता बांग्लादेश में परिवार के साथ बस गए हैं और वहां की नागरिकता भी इन्हें मिल गई है। ये अलगाववादी बांग्लादेशी पासपोर्ट का प्रयोग करते हैं जो आसानी से उन्हें उपलब्ध हो जाते हैं। इस पासपोर्ट के जरिए ये दुनियाभर के आतंकी संगठनों के संपर्क में आते हैं और उनके प्रशिक्षण स्थलों तक पहुंच बनाते हैं। एनडीएफबी के अलगाववादी नेता और उपाध्यक्ष धीरेन बोरो और महासचिव गोविंदा बासू मैत्री को सरक्षा एजेंसियों ने साल 2002-2003 में पकडा था।

इन्होंने खुलासा किया था कि पूर्वोत्तर के कई आतंकी संगठनों को आइएसआइ पाकिस्तान में प्रशिक्षण देती है और उन्हें ढाका से पाकिस्तान ले जाया जाता है।

इसके पहले बोडो और संथाल आदिवासियों का विवाद तो चलता रहता था, लेकिन पृथक बोडोलैंड की मांग खालिस्तान की मांग के साथ ही उठी। इन सबके पीछे पाकिस्तान के तानाशाह जिया उल हक की अस्सी के दशक में शुरू की गई आपरेशन जिब्राल्टर की वह नीति थी जो भारत में बड़े पैमाने पर जातीय और सांप्रदायिक तनाव भड़काने के लिए तैयार की गई थी। असम में मुसलमानों और बोडो के बीच हिंसक संघर्ष होते रहे हैं। इन इलाकों में बोडो की संख्या करीब तीस फीसद है और आम चुनावों में यदि कोई बोडो उम्मीदवार किसी गैर बोडो उम्मीदवार से हार जाए तो हिंसा अक्सर भडक जाती है।

बोडो अलगाववादियों के एक नए गुट बोडो लिबरेशन टाइगर्स यानी बीएलटी ने हिंसा का रास्ता छोड बोडोलैंड पीपुल्स फ्रंट नामक राजनीतिक पार्टी बनाई। अब यह दल

> प्रभावी भूमिका में आ गया है। बोडोलैंड क्षेत्रीय परिषद ने भी उग्रवादी संगठनों और उनके समर्थकों को राजनीतिक ताकत के साथ आर्थिक लाभ भी प्रदान किया है। यह भी साफ है कि बोडोलैंड टेरीटोरियल एरिया डिस्ट्रिक्ट्स (बीटीएडी) में अल्पसंख्यक होने के बावजूद बोडो अपना राजनीतिक वर्चस्व बनाए रखना चाहते हैं। बोडोलैंड पीपुल्स फ्रंट अब असम का ऐसा राजनीतिक दल भी है जो बोडो के विशेष अधिकारों का समर्थन करता है। इसे नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रंट ऑफ बोडोलैंड (एनडीएफबी) का ही एक गुट माना जाता है। इसके साथ ही बोडो उग्रवादी संगठनों में उल्फा को भी बेहद खतरनाक माना जाता है। वह असम का विभाजन कर अलग संप्रभु राष्ट्र की मांग कर रहा है और अरुणाचल से सटे इलाकों को

बोडोलैंड घोषित करना चाहते हैं। उनका दावा है कि अलग हए बिना बोडो जाति का विकास नहीं हो सकेगा।

नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रंट ऑफ बोडोलैंड के कुछ आतंकियों के जेल में होने से बोडोलैंड आंदोलन बहुत ज्यादा प्रभावित हो इसकी संभावना कम ही है। असम में अभी भी उल्फा और नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रंट ऑफ बोडोलैंड के उग्रवादी सिकय होकर कार्य कर रहे हैं। उन्हें न केवल राजनीतिक समर्थन हासिल है. बल्कि पडोसी देशों से सामरिक मदद भी मिल रही है। साल 2016 में पृथक बोडोलैंड के पक्ष में कई संगठनों ने मिल कर राज्य भर में हिंसक प्रदर्शन भी किए थे। जाहिर है, बोडोलैंड की समस्या को समाप्त करने के लिए सामृहिक रूप से दीर्घकालीन राजनीतिक, सामाजिक और सामरिक प्रयास करने की जरूरत है।

साहित्य का जीवन

अतुल चतुर्वेदी

आ ज की युवा पीढ़ी का साहित्य से रिश्ता बड़ी तेजी से छीजता जा रहा है। हाल में ऐसे कुछ अनुभवों ने मुझे भी फिक्र में डाल दिया। एक ट्रेन यात्रा के दौरान कॉलेज के कुछ विद्यार्थियों का समृह उत्तर भारत की यात्रा जा रहा था। मैंने देखा कि उनमें से अधिकतर युवा जहां यात्रा के लिए जा रहे थे, उस जगह के बारे में सांस्कृतिक और ऐतिहासिक रूप से कुछ विशेष नहीं जानते थे। उनका समस्त ज्ञान 'गुगल बाबा' से प्राप्त जानकारी तक सीमित था। जब मैंने उन जगहों के साहित्यिक और सांस्कृतिक महत्त्व के बारे में चर्चा की तो उन्हें आश्चर्य हुआ, लेकिन कोई जिज्ञासा भाव प्रकट नहीं हुआ। उनमें से अधिकतर बीटेक और एमबीए के छात्र थे। लेकिन उन्होंने हिंदी साहित्य में सिर्फ प्रेमचंद, निराला, महादेवी आदि का नाम सुना था, क्योंकि उनकी रचनाएं उनके दसवीं या बारहवीं तक के पाठ्यक्रम में थीं।

नए लेखकों को पढ़ने का उनके पास न समय है, न इच्छाशक्ति। एक नौजवान कहने लगा- 'आजकल सब कुछ मोबाइल पर उपलब्ध है, ई-बुक्स हैं, तो किताब इतनी महंगी कौन खरीदे?' मेरे पूछने पर उसने कुछ लोकप्रिय अंग्रेजी लेखकों की किताबों सहित कुछ अन्य

किताबें पढ़ी होने की बात बताई, क्योंकि वे व्यक्तित्व विकास, मार्केटिंग, मानवीय व्यवहार आदि के विषय में हैं। जबिक बॉलीवुड की हरेक हलचल का उन्हें अद्यतन ज्ञान था। हमारा मीडिया भी व्यापारिक हितों के लिए ऐसी खबरों को खास तवज्जो दे रहा है। कुछ माह पहले एक कविता पाठ कार्यक्रम में जाना हुआ था। वहां निर्णायक के रूप में अपने अनुभवों के आधार पर कहूं तो बहुत अफसोस होता है सोच कर कि हमारी

युवा पीढ़ी आखिर किस दिशा में जा रही है! अधिकतर कविताएं प्रेम ट्टने की स्थितियों और नारी को लेकर व्यक्त रुग्ण मनोभावों पर थीं। न उन्हें छंद

का ज्ञान था, न मुक्त छंद कविता का। कविता के नाम पर वे इंटरनेट की सामग्री बटोर लाए थे।

कुछेक विद्यार्थी, जिनकी कविताएं मौलिक थीं और जिनमें साहित्य की वैचारिक और गंभीर समझ थी, उन्हें छात्र-छात्राएं सुनने की जगह शोर मचाने में अधिक रुचि ले रहे थे। साहित्य उत्सवों में भी युवाओं की उपस्थिति अधिकतर सेलिब्रिटियों वाले पांडालों में ही रहती है, गंभीर साहित्यकारों की चर्चा में कम। दरअसल, हमारी यवा पीढ़ी को सोशल मीडिया की लत लग चुकी है, जिसके कारण उसकी पठन-पाठन क्षमता गहरे तक प्रभावित हुई है। सस्ते और दोहराए गए चुटकुलों, फूहड़, अश्लील

वीडियो और राजनीतिक विद्वेष से भरी सामग्री परोसी जा रही है। गलत इतिहास और महापुरुषों के बारे में भ्रामक जानकारी परोस कर उनकी सोच को विकृत किया जा रहा है। एक सर्वे के अनुसार एक युवा औसतन तीन से चार घंटे सोशल मीडिया पर खराब कर रहा है।

इसमें भी बंटवारा हो चुका है। फेसबुक अब प्रौढ़ व्यक्तियों, राजनेताओं के प्रचार और व्यापार का प्लेटफार्म रह गया है। वहां युवा कम हो रहे हैं। युवाओं का पंसदीदा प्लेटफार्म इंस्ट्राग्राम, वाट्सऐप है, दुनिया मेरे आगे

जहां उनकी उपस्थिति लगातार

देखी जा सकती है। ट्विटर पर राजनेताओं के आरोप-प्रत्यारोप और सेलीब्रिटियों का कब्जा अधिक है। साहित्य के विषय विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं से हटा दिया जाना और बारहवीं तक हिंदी को अनिवार्य विषय के रूप में हटा देना आदि ऐसे नीतिगत फैसले हैं, जिन्होंने साहित्य की दूरी युवाओं से और बढ़ाई है। दूसरे, हिंदी में साहित्येतर विषयों जैसे व्यक्तित्व विकास, अभियांत्रिकी, प्रबंधन, चिकित्सा आदि की उच्च स्तरीय और विदेशी साहित्य की अनुदित पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं। पुस्तक संस्कृति को बढ़ावा देने की कोई पहल विशेष रूप से उत्तर भारतीय समाज में नजर नहीं आती। वहां कपडों. महंगे गैजेटस आदि पर हजारों रुपए खर्च किए जा सकते हैं, लेकिन पुस्तकों पर नहीं।

पुस्तकालयों की स्थिति छोटे शहरों में दयनीय है। स्कूलों में तो अब पुस्तकालय अध्यक्ष के पद ही समाप्त किए जा रहे हैं। युवा पीढ़ी को लक्षित करके 'पल्प साहित्य' में जो परोसा जा रहा है, वह मात्र युवाओं की मानसिकता को भांप कर लिखी गई कहानियां हैं, जिनमें कुछ उनके संघर्ष तो कुछ रोमांस का तड़का लगा कर भाषायी भदेसपन और गालियों की छौंक के साथ परोसा जा रहा है। इस तरह के विकृत साहित्य से युवाओं में न तो संवेदनाएं विकसित नहीं होंगी, न देश की वास्तविक परिस्थितियों की आर्थिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक समझ बनेगी। ऐसे में देश की युवा पीढ़ी का देशप्रेम उसके प्रति समर्पण और समस्याओं का ज्ञान सतही ही रहेगा। पढ़ने की आदत बनाने के लिए जो एकांत, एकाग्रता और वातावरण की आवश्यकता होती है, उसकी आज के कोलाहल से भरी व्यस्त दिनचर्या में उम्मीद करना बेमानी है। लेकिन उसके लिए हमें 'रीडिंग कॉर्नर' विकसित करने होंगे। कुछ शहरों में ऐसे निजी पुस्तकालय चल रहे हैं। तमाम बाधाओं के बाद भी हमें अपने युवाओं को इस दिशा में मोड़ना होगा, इसके लिए सस्ते मुल्य पर साहित्य और साहित्येतर उत्कृष्ट पुस्तकें उपलब्ध कराने और पस्तकालयों की शृंखला को देश भर में मजबूत करने जैसे ठोस कदम उठाने होंगे। अन्यथा पाठकों की कमी और किताबों की बिक्री का रोना चलता रहेगा।

गारंटी के साथ

क्रेंग्रेस अध्यक्ष ने लोकसभा चुनाव से पहले एक बड़ा दांव चला है। उन्होंने कहा कि केंद्र में अगर उनकी सरकार बनती है तो गरीबों को न्यूनतम आय की गारंटी दी जाएगी। न्यूनतम आय की गारंटी एक तरह से सबको बुनियादी आय यानी यूनिवर्सल बेसिक इन्कम (यूबीआई) ही है जिसके तहत सरकार देश के गरीब लोगों को बिना शर्त एक तय रकम देती है। अगर यह योजना लागू होती है तो सरकार को देश के हर गरीब नागरिक को एक निश्चित राशि निश्चित अंतराल में देनी होगी। प्रो. स्टेंडिंग के अनुसार भारत में यूबीआई को लागू करने पर जीडीपी का तीन से चार प्रतिशत खर्च आएगा जबिक अभी कुल जीडीपी का चार से पांच प्रतिशत सब्सिडी में चला जाता है। उनके मताबिक यबीआई और सब्सिडी एक साथ नहीं चल सकते, इससे सरकार पर वित्तीय भार ज्यादा पड़ेगा। लिहाजा. सरकार को चरणबद्ध तरीके से सब्सिडी खत्म करनी होगी। यूबीआई को मध्यप्रदेश के एक गांव में पायलट प्रोजेक्ट के रूप में लागू किया जा चुका है जिसके परिणाम काफी अच्छे रहे हैं।

वैसे यूबीआई लागू करना इसलिए भी आवश्यक है कि देश में दिन-प्रतिदिन आर्थिक असमानता बढ़ती जा रही है। हाल ही में आई ऑक्सफेम इंडिया की रिपोर्ट में बताया गया है कि देश के शीर्ष एक प्रतिशत अमीरों की संपत्ति 39 प्रतिशत बढ़ी जबकि आधी आबादी यानी 65 करोड़ लोगों की संपत्ति तीन फीसद बढी। भारत में शीर्ष नौ अमीरों की संपत्ति 50 फीसद आबादी की संपत्ति के बराबर है। भारत में एक फीसद अमीरों के पास कुल संपत्ति का 51.53 फीसद हिस्सा है। दस प्रतिशत अमीरों के पास देश की कुल संपत्ति का 77.4 प्रतिशत हिस्सा है जबकि 60 फीसद आबादी के पास सिर्फ 4.8 प्रतिशत हिस्सा है। देश में

जहां अमीरों की संपत्ति में तेजी से इजाफा हो रहा है वहीं निम्न और मध्यम वर्ग का घट रहा है।

अगर यूबीआई लागू करनी है तो सबसे पहले ऐसे लोगों की पहचान की जाए जो गरीबी रेखा के नीचे आते हैं। रंगराजन रिपोर्ट के अनुसार देश की लगभग 30 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा के अंतर्गत आती है। लिहाजा, वास्तविक रूप से उसी को योजना का लाभ मिलना चाहिए। सरकार एक मापदंड तय करके निश्चित राशि लोगों के खाते में भेजे। आधार लोगों की वास्तविक स्थिति पता लगाने के लिए कारगार साबित हो सकता है। देश के सामाजिक और आर्थिक रूप से कमजोर लोगों

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-८, सेक्टर-7, नोएडा २०१३०१, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

को ऊपर उठाने में यूबीआई निश्चित ही कारगार साबित होगी. साथ ही इससे आर्थिक असमानता की गहरी होती खाई भी धीरे-धीरे पटेगी।

 अमित पांडेय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़ दुराव से दूर

राजनीति का बाजार गरमाने लगा है। इस गर्माहट में हमारे आपसी रिश्ते खराब न हों, इस बात का ध्यान रखने की जरूरत है। मान लिया हमारा कोई साथी राजनीतिक प्रतिबद्धता की वजह से अपनी एक अलग विचारधारा रखता है तो इसका यह मतलब कर्तई नहीं है कि वह शख्य हमसे नाराज है और बदले में हम भी उससे दुराव रखें।

कहने की आवश्यकता नहीं कि हमारी मुसीबत में सिर्फ हमारे दोस्त, रिश्तेदार या पड़ोसी ही काम

न हो कि तर्क-वितर्क में तो हम जीत जाएं मगर हमारे आपसी रिश्तों में दरार पड़ जाए! चुनाव तो हर पांच साल में आते-जाते रहेंगे लेकिन दोस्त और हितैषी वर्षों की साधना के बाद ही मिलते हैं। ● शिबन कृष्ण रैणा, अलवर कुपोषण के विरुद्ध भारत में कृपोषण से निपटने और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित

आएंगे, कोई नेता नहीं। इसलिए राजनीति पर बेवजह

आवेश में आकर बहस करके हम अपने दोस्ताना

ताल्लुकात पर क्योंकर आंच आने दें? कहीं ऐसा

करने के मकसद से विभिन्न योजनाएं चलाई गईं लेकिन समस्या की विकरालता को देखते हुए वे नाकाफी तो थीं ही, व्यवस्थागत, प्रक्रियात्मक विसंगतियों और भ्रष्टाचार की वजह से तकरीबन बेअसर भी साबित हुई हैं। दरअसल, भूख से बचाव यानी खाद्य सुरक्षा के तहत सभी नागरिकों को जरूरी पोषक तत्त्वों से परिपूर्ण भोजन उनकी जरूरत के हिसाब से समय पर और गरिमामय तरीके से उपलब्ध करना किसी भी लोकतांत्रिक और जनकल्याणकारी सरकार का पहला दायित्व है। लेकिन हमारे देश में भूख और कृपोषण की समस्या आज भी विकराल बनी हुई है। सरकार ने अपने स्तर पर प्रयास तो बहुत किए है लेकिन अपेक्षित सफलता नहीं मिल रही है। कुपोषण के कारण विकलांग बच्चे

दिखने को मिलते हैं। सरकार को कुपोषण दूर करने के लिए तत्काल प्रभावी उपाय करने चाहिए।

• मोहम्मद असिफ, दिल्ली विश्वविद्यालय

चनावी वायदे

विपक्ष में रह कर सरकार की आलोचना करना और उसके विरुद्ध किसी की उचित-अनुचित मांग का आंख मींच कर समर्थन करना बहत आसान होता है। कांग्रेस ने राजस्थान में विपक्ष में रहकर गुर्जर आरक्षण का खुल कर समर्थन किया था और वायदा किया था कि यदि वह प्रदेश में सत्ता में आई तो तुरंत गुर्जर आरक्षण को मंजूरी देगी। अब चूंकि कांग्रेस राजस्थान में सत्ता में आ चुकी है तो गुर्जरों ने अपनी पांच प्रतिशत आरक्षण की मांग याद दिलाई, मगर अब कांग्रेस इस पर टालमटोल कर रही है। जो बात या मांग स्वीकार करने के योग्य न हो. उसका अपने राजनीतिक फायदे के लिए प्रयोग करना कहां तक सही है! गुर्जर आरक्षण के मुद्दे पर कांग्रेस ने लगभग हाथ खड़े कर दिए हैं और कहा है कि यह मुद्दा तो केंद्र सरकार का है और गुर्जरों को प्रधानमंत्री से गुहार लगानी चाहिए। यानी अब जबिक गुर्जरों के वोट उसने हासिल कर लिए तो केंद्र का बहाना बनाकर इस मुद्दे से पल्ला झाड़ रही है!

आज की राजनीति का स्वरूप 'एक हाथ से ले- दूसरे हाथ से दे' का हो गया है। वोट लेने के बाद मतदाता को तुरंत पुरस्कृत करना पड़ेगा वरना आंदोलनों के कारण कानून-व्यवस्था को कायम रखना मुश्किल साबित होता है। कांग्रेस सिहत सभी दलों को चाहिए कि चुनाव-पूर्व वही वायदे किए जाएं जो उनके अधिकार क्षेत्र में हों और जिनके कारण प्रदेश और देश के अन्य नागरिकों के हितों का हनन न हो। मतदाताओं को

बरगलाने की नीति बंद होनी ही चाहिए। सतप्रकाश सनोठिया. रोहिणी. नई दिल्ली